Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

कालिदासनाट्यत्रयी में छन्द - अलंकार - आस्वादगुण विवेचन - प्राकृत साहित्य के सन्दर्भ में काव्यशास्त्रीय परम्परा

डॉ. सीता राम शर्मा
प्रोफेसर (साहित्य) राजकीय धुलेश्वर आचार्य, (पी.जी. संस्कृत महाविद्यालय, मनोहरपुर, जयपुर)

शोधसारांश- कवि कालिदास के सभी रूपकों में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रीति, गुण, ध्वनि, अलंकार, रस और रसों की अभिव्यंजना के लिए विविध छन्दों का प्रयोग किया है। नाटक में उन्होंने शांत रस को भी सुन्दर स्थान प्रदान किया है। सभी रूपकों में संस्कृत के साथ ही प्राकृत एवं उसके भेद शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची के साथ ही अपभ्रंश का भी प्रयोग होने से काव्यगत सौन्दर्य और निखरकर आया है। ऐसा प्रयोग कवि कालिदास कृत नाट्यत्रयी के अतिरिक्त अन्य रूपकों में कम ही मिलता है।

मुख्यशब्दा- कालिदास, काव्यशास्त्रीय, रीति, गुण, ध्वनि, अलंकार, रस, छन्द।

सम्पूर्ण विश्व की प्राचीन और लोकप्रिय लोकभाषा प्राकृत है, जिसका प्रयोग सनातनकाल से सन्तजन आत्मशक्ति – संवर्धन और लोककल्याण के लिए करते आए हैं। प्राकृत और संस्कृत के मध्य एक अक्षुण्ण सम्बन्ध है । प्राकृत–साहित्य का प्रभाव तथा योगदान संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वत्र दृष्टिगत है। राजशेखर ने बालरामायण' में लिखा है कि–

गिरः श्रव्याः दिव्याः प्रकृतिमधुराः प्राकृतमधुराः ।

सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम्।। '

प्राचीनकाल में आचार्यों, तत्त्वज्ञों एवं महाकवियों ने दोनों ही भाषाओं में समानरूप से साहित्य सृजन किया है, यथा– आनंदवर्धनाचार्य, अभिनवगुप्त तथा भोजराजादि । संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्राकृत उद्धरणों के माध्यम से अपने मतों / सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जो संस्कृत काव्य और प्राकृत काव्य के गहन व सहज–सम्बन्ध के सूचक हैं।

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा से ज्ञात होता है कि विभिन्न आचार्यों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से रीति, गुण, अलंकार, रसादि को काव्य में सबसे महत्वपूर्ण माना है । किन्तु इन सबका संयोजन आचार्य विश्वनाथ एवं राजशेखर ने किया है जो एक पूर्ण रूपक के रूप में विद्यमान है। राजशेखर ने काव्यपुरूष के स्वरूप का वर्णन काव्यमीमांसा' के तीसरे अध्याय में लिखा है कि–

शब्दार्थौ ते शरीर, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमप्रभंशः, पैशाची पादौ, उरो मिश्रम् । समः प्रसनो मधुरः उदारः, ओजस्वी चासि । उक्तिचणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छंदासि प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति ।

साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो रूपों में श्रव्य और दृश्य में विभाजित किया है। दृश्य काव्य में रूपक एक अलग विधा है क्योंकि इसमें भाषा के साथ भाषेतर माध्यम भी संयुक्त रुप से जुड़े रहते हैं तथा दृश्यता इसकी सबसे बड़ी विधा है। कालिदास के नाट्यप्रयोग में ध्वनि, शब्द वाक्यादि तत्वों का प्रयोग कर अपने रूपकों की भाषा को काव्यात्मक रुप से भी अलंकृत किया है। कालिदास ने अपने रूपकों में ध्वनि के जो उत्तमोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किये उसके कारण ध्वन्यालोककार ने कालिदास के विषय में यह कहते हुए आनन्द का अनुभव किया कि “ **द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवयः** ”।

भारतीय काव्यशास्त्र में 1. शब्द और अर्थ, 2. रीति, 3. गुण, 4. अलंकार और 5. रस आदि तत्वों को सामान्यत: काव्य का मुख्य तत्व स्वीकार किया गया हैं। इनके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण तत्व है छन्द जिसे वेदांग के रूप में भी परिगणित किया गया है। छन्द के अभाव में पद्यात्मक काव्य की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती, अत: यह काव्य का उसी प्रकार महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग है जैसा कि शब्द और अर्थ । कालिदास के रूपकों के संवादों में काव्य-गत सभी विशेषताएँ प्राप्त होती है। कालिदास के नाटकों में गद्य और पद्य दोनों शैलियों का प्रयोग किया गया है।

काव्य तत्व में गुण को महत्त्वपूर्ण तत्व माना है। इसके अभाव में काव्य का सौन्दर्याधान संभव नहीं होता। शब्द और अर्थ में जो विचित्रता, वक्रता एवं विशिष्टता का समावेश होता है उसका कारण गुण ही है। अत: गुण को शब्द और अर्थ का धर्म कहा गया है। 2 नाट्य के सन्दर्भ में गुण का सम्बन्ध रस से माना गया है क्योंकि नाट्य में शब्दों का विशेष महत्व होने पर भी मुख्य उद्देश्य रसाभिव्यक्ति ही है। आचार्यों के अनुसार गुणों की संख्या तीन है प्रसाद, ओज और माधुर्य । वस्तुत: उन गुणों का सम्बन्ध मानव की चित्तवृत्तियों के साथ माना गया है । रसानुभूति की प्रक्रिया में चित्त की तीन अवस्थाएं द्रुति, दीप्ति एवं व्याप्ति है। इन तीनों में माधुर्य द्रुति, ओज दीप्ति एवं प्रसाद व्याप्ति है।' नाट्य में चित्तवृत्तियां इन्हीं तीन अवस्थाओं में प्रचलित है। कालिदास ने नाट्य प्रयोग के अन्तर्गत इन तीनों ही गुणों का अत्यन्त कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

माधुर्य गुण की विशेषता श्रुति मधुरता है। भाषा में मधुरता का प्राधान्य एवं चित्त में आनन्द की अनुभति का कारण माधुर्य गुण ही है। 2 इस गुण में माधुर्य वर्ण, सानुनासिक वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) एवं छोटे-छोटे समासों का प्रयोग होता है इसकी अभिव्यक्ति श्रृंगार, करुण या शांत रस होती है। कालिदास के रूपकों में माधुर्य गुण की ये सभी विशेषताएँ मिलती हैं। यथा-

सरसिजसनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।

इस श्लोक में माधुर्य गुण की अति सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसमें अर्थ के अनुकूल पदों में भी सुकुमारता है। इसे पढ़ते ही चित्त आनन्दित हो उठता है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी कवि ने माधुर्य गुण का प्रयोग किया है। 1 कालिदास के रूपकों में प्रयुक्त पद्यात्मक संवादों में मधुरत्व की अभिव्यक्ति माधुर्य गुण से ही प्रेरित है। प्रत्येक पद्य अपनी मधुरिमा से सहृदय को आह्लादित करती है।

ऐसे शब्द जिनके श्रवण से चित्त का विस्तार और मन में तेज की उत्त्पत्ति होती है वे ओजगुण युक्त माने जाते हैं। ओज का शाब्दिक अर्थ ही है प्रताप, तेज तथा दीप्ति। इन गुणों की अभिव्यक्ति कठोर एवं परुष वर्णों, द्वित्व वर्णों, रेफ एवं दीर्घ समासों से होती है। वीर विभत्स एवं रौद्र रसों के आस्वादन से मन में तेज उत्पन्न होता है। अत: ओजगुण का प्रयोग इन्हीं रसों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। ओजगुण युक्त शब्दों के श्रवण से चित्त में उत्साह का संचार संचरित होने लगता है और साथ ही वीरत्व की अनुभूति होने लगती है। एक उदाहरण इस प्रकार है-

अनवरत धनुरर्ज्यास्फलनक्रूरपूर्वं

रविकिरणसहिष्णु खेदलेशैरभिन्नम्।

उपचितमपि गात्रं व्याप्तत्वादलक्ष्यं

गिरिजर इव नाग: प्राणसारं बिभर्ति ।। '

इस पद्य में ओजोपयुक्त दीर्ध समस्त पदावली का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक पद अपने वर्ण जन्य परुषता को अभिव्यक्त कर रहा है। इसमें रेफ युक्त वर्णन अनुस्वार एवं संयुक्ताक्षर शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

रूपकों में प्रसाद गुण के प्रयोग के कारण ही कालिदास को विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। रूपकों में प्रयुक्त भाषा का प्रभाव ऐसा है कि काव्यगुणों से अनभिज्ञ श्रोता भी पात्रों के वार्तालाप को सुनकर ही अर्थ समझ लेता है। पद्यात्मक संवाद तो और भी प्रभावकारी हैं। क्योंकि

वह श्रवणमात्र से ही मधुरता की वर्षा करती हैं जैसे मालती पुष्पों की सुगंध ग्रहण के बिना भी दर्शनमात्र से ही आकृष्ट कर लेती है । कालिदास के पद्यात्मक संवादों की इस विशिष्टता के कारण उनका प्रसादगुण शैली ही है। 'प्रसाद' शब्द का शाब्दिक अर्थ ही है प्रसन्नता अथवा विकसित होना ।

वस्तुत: कालिदास के रूपकों की यही मुख्य विशेषता है कि उनकी भाषा संरचना नाट्यरचना के अनुरूप ही है इसी कारण भाषा सामान्य बोलचाल के अनुरूप है। यही कारण है कि उनके रूपकों की भाषा शैली वैदर्भी रीति के समस्त गुणों युक्त है क्योंकि उसमें मधुर शब्द, ललित रचना, अत्यल्प समासयुक्त पदों का प्रयोग एवं माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों गुणों की सत्ता है। तीनों गुणों में भी माधुर्य एवं प्रसाद गुण की ही प्रधानता है क्योंकि इन्हीं दोनो के प्रयोग से पद्यात्मक संवादो में मधुरता एवं सरसता का समावेश होता है।

कालिदास के नाटक भिन्न-भिन्न अलंकारों से भी अलंकृत है। आचार्य भरत ने नाटक के लिए केवल चार अलंकारों को ही उपयोगी कहा है। यथा उपमा, रूपक, दीपक और यमक ।' नाट्य रचना को अलंकृत करने एवं रस को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग करना चाहिए। अत: भरत ने विभिन्न रसों के लिए विभिन्न अलंकारों के प्रयोग का विधान किया है। इसी के अनुसार कवि कालिदास ने अलंकारों का प्रयोग किया है। इन्होने अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति के साथ ही उपमा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उपमाओं में रम्यता, यथार्थता, विविधाता, औचित्य, पूर्णत्व प्रभावोत्पादकता आदि अनेक गुण विद्यमान है। यथा-

विदूषक - भो विसुद्धो भविअ तुमं जोव्वणवदि इमं पेक्ख ।

(मालविकाग्निमित्रम् पञ्चम अंक)

शकुन्तला - अदो क्खु पिअंवदा सि तुमं । (अभि. शा. प्रथम अंक)

सामिअं संभावितआ जह अहं तुए अमुणिआ तह अ अणुरतस्स तु हअ एअमेअ तुह ।

वरि अ मे ललिअपारिआअसअणिज्जम्मि होन्ति सुहा णंदणवणवाआ वि सिहि व्व सरीरे । (विक्रमो 2/2)

रस आस्वादरूप रूप में एक प्रकार का ही है । किन्तु उसके उपाधि भेद से अनेक प्रकार माने गये हैं। रसभेद के विषय में कालिदास का विचार है कि नाट्य में नटों द्वारा रंगमंच पर अभिनीत मानव जीवन का जो विविधरूप हमें देखने को मिलता है, उसमें सुख, दु:ख, भलाई, बुराई, प्रेम, घृणा, उत्थान और पतन सब कुछ है। मानवजीवन के अपने विभिन्न रस देखने को मिलता है। इस प्रकार उनके अनुसार नाट्य नानारस वाला है। 2 कालिदास के रूपकों में श्रृंगार रस अंगीभूत होने के साथ ही अन्य रसों का भी सुन्दर विवेचन किया है। श्रृंगार रस का एक सुन्दर विवेचन इस प्रकार है-

मूल प्राकृत

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उणकामो दिवावि रत्तिम्पि । णिग्घिण ! तवइ बलीअं तु वुत्तमणोहराई अंगाई ।।

अभिज्ञानशाकुन्तल 3/3

संस्कृतच्छाया

तब न जाने हृदयं मम पुन: कामो दिवाऽपि रात्रिमपि ।

निर्घुण तपति वलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यांगानि ।।

इसी प्रकार से अभिशाकुन्तल, 5/2, 1/4, 3 / 13 मालविकाग्निमित्रम् 2/8, 2/4 एवं विक्रमोवशीयं के 2/12 आदि पद्यों / गाथाओं में संयोग और वियोग श्रृंगार के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। अन्य रसों का भी वर्णन प्राप्त होता है । हास्य रस का मनोहारी वर्णन विदूषक के द्वारा विक्रमोर्वशीयं अंक 3 में प्राप्त है। यथा-

विदुषक - आम् भो! अहं पि जदा सिहरिणी रसालं अण लहे तदा तं एव्व चिंतयंतो आसादेमि सुहं ।

अर्थात् मुझे भी जब तक शिखरिणी अथवा आम नहीं मिलता तब तक उनका नाम लेकर तसल्ली करता हूँ। महाकवि कालिदास के अन्य रूपकों में भी प्राय: सभी रसों का वर्णन मिलता है।

रूपकों की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी छन्दो योजना । पद्यात्मक पद्यों में और लघु गुरु वर्णो की सीमा निश्चित होती है जबकि गद्य में नहीं। पद्यात्मक पद्यों के चारो पदों में गेयता और लयता बनी रहती है। नाटकीय संवाद अधिकतर गद्यात्मक ही होते हैं किन्तु मनोरागों और

संवेदनाओं का प्रस्फुटन पद्यों द्वारा ही होता है। सहृदय व्यक्ति के हृदय में संवेदना की विवृत्ति लयात्मक रचना द्वारा सुचारुता से सम्पन्न होती है। यह लयात्मकता नाट्य का मोहक अंग है जो भिन्न-भिन्न प्रकार के छन्दों द्वारा निष्पन्न होती है। छन्दयोजना के नियम में रहकर कालिदास ने पद्यों का सृजन नहीं किया बल्कि ऐसा लगता है कि पद्यों को देखकर छन्दों का विधान आचार्यों ने किया है। कालिदास की रचनाओं के पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि किसी भाव विशेष के अभिव्यंजनार्थ उन्होंने पद्यों की रचना की है। रूपकों में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। रस की दृष्टि से ऐसे छन्दों का प्रयोग किया है जो सहृदय के चित्त में आह्लाद उत्पन्न करते हैं।

कालिदास ने अपने सभी रूपकों में संवादों के लिए लगभग 26 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, तथा अभिज्ञान शाकुन्तल में त्रिष्टुप वैदिक छन्द का भी प्रयोग किया है। सामान्यत: यह कालिदास का अपने तरह का अनुठा प्रयोग है। अन्य कहीं पर उनकी रचनाओं में नहीं मिलता है। यथा-

आअमि वेदिं परित: क्लृप्तधिष्णया: समिद्धन्त: प्रान्तसंस्तीर्णदर्भा: ।

अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगंधैवैतानास्त्वाँ वह्नय: पावयन्तु ॥अभि. शा. 4/8

कालिदास के द्वारा प्रयुक्त छन्दों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि बडे छन्दों की अपेक्षा कवि ने छोटे छन्दों का अधिक प्रयोग किया है। कालिदास को आर्या या गाहा छन्द अधिक पसंद है। तीनों रूपकों को मिलाकर आर्या/ गाहा छंद प्रयोग 95 बार किया है। अनुष्टुप का प्रयोग 60 बार किया है। इसके अलावा श्लोक, वसंततिलका, शादूर्लविक्रीडित छन्द का भी प्रयोग बहुतायत प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त पृथ्वी, हरिणी, चतुष्पदी, अपरवक्त्र, पथ्यावस्त्र आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है। कालिदास का लयात्मक छन्द प्रयोग एक मुख्य विशेषता है इसिलिए कहा गया है कि-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।

तत्राऽपि चतुर्थोऽक: तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

यह कहा जा सकता है कि कवि कालिदास ने आर्या/ गाहा छन्दों का जितना सुन्दर प्रयोग रूपकों में किया है उतना काव्यग्रंथों में नहीं। छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है-

आर्या- आ परितोषाद विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेत: ॥ अभिज्ञाशाकुन्तल 1/2

गाहा - एषा वि पियेण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीअहरं ।

गरूअंवि विरहदुक्खं आसाबंधो सहावेदि ॥ अभिज्ञा. 4/16

नाट्यभाषा की दृष्टि से छन्द योजना का महत्व इसलिए भी अधिक है कि क्योंकि इसका सम्बन्ध पद्यात्मक संवादों से जोकि भाषा का एक महत्वपूर्ण विभाग है। अपने लक्षण, प्रकार्य, महत्व तथा आवश्यकता प्रत्येक रूप में वह नाट्यभाषा से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है। वस्तुत: छन्द सामान्य भाषा के अन्दर से निकली हुई एक विशेष भाषा है। इसलिए छन्द का उसी माध्यम भाषा के उच्चारण तथा उनकी प्राकृतिक लय के साथ घनिष्ठ संबंध है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि कवि कालिदास के सभी रूपकों में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रीति, गुण, ध्वनि, अलंकार, रस और रसों की अभिव्यंजना के लिए विविध छन्दों का प्रयोग किया है। नाटक में उन्होंने शांत रस को भी सुन्दर स्थान प्रदान किया है। सभी रूपकों में संस्कृत के साथ ही प्राकृत एवं उसके भेद शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची के साथ ही अपभ्रंश का भी प्रयोग होने से काव्यगत सौन्दर्य और निखरकर आया है। ऐसा प्रयोग कवि कालिदास कृत नाट्यत्रयी के अतिरिक्त अन्य रूपकों में कम ही मिलता है।

सन्दर्भग्रन्था:

सहायकाचार्य (संवि), पालि - प्राकृत, मुक्तस्वाध्यायपीठ, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली - 110058

1. बालरामायण - राजशेखर

2. काव्यमीमांसा, अध्याय 3 पृष्ठ 6

3. अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदास प्रभृतयो द्वित्रा: पञ्चषा वा महाकवय: इति गण्यन्ते । ध्वन्यालोक 1/6 वृत्ति जगन्नाथ पाठक

4. काव्यशोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा: । ये खलु शब्दार्थयो धर्मा: काव्यशोभां कुर्वन्ति ते गुणा: । काव्यालंकार 3/1/1

5. हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति – डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 71

6. चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते । साहित्यदर्पण 8/2 3. अभिज्ञानशाकुन्तल 1/20

7. दीर्घाक्षिं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावसयो:

8. संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तस्तनमुर: पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।

9. मध्य: पाणिमतोनितम्बि जघनं पादावरालांगुली

10 उन्दोर्नतयितुर्यथैव मनसिश्लिष्टं तथास्यावपु: । मालविकाग्निमित्रम् 2/3

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधे: प्रसाधनविशेष: ।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्था: ।। विक्रमोर्वशीयम् 2/3

11. साहित्यशास्त्रकोश पृष्ठ 238

12. अभिज्ञानशाकुन्तल 2/4

13. उपमां रूपकं चौव दीपकं यमकं तथा!

अलङ्कारास्ते विज्ञेयाशचत्वारो नाटकाश्रय: । । –नाट्यशास्त्र 17/43 2. देवानामादिमामनन्ति मुनय: शान्तं ऋतुं चाक्षुष,

रुद्रेणेदमुभाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा । त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते,

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ।। मालवि, 1/4